अध्याय–5
विष पिया, अमृत दिया

– हितेश शंकर

एक बिंदु, परिपूर्ण सिन्धु,
है ये मेरा हिन्दू समाज।
मैं तो समष्टि के लिए व्यष्टि का,
कर सकता बलिदान अभय।।

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की ये पंक्तियाँ डॉ. भीमराव अंबेडकर के व्यक्तित्व के लिए एकदम खरी बैठती हैं। कुछ लोग पहली बार में उखड़ सकते हैं। आपत्ति जता सकते हैं। विवाद खड़ा करने का प्रयास भी कर सकते हैं। परन्तु ठहरिए, डॉ. अंबेडकर का जीवन इसी उखाड़–पछाड़, आपत्ति–अनापत्ति, विवाद–संवाद में सीझा हुआ जीवन है। डॉ. अंबेडकर का जीवन सरस–समतल–सपाट नहीं है। यह बार–बार अपमान की चिनगारियों पर तपता है और जगह–जगह सम्मान के छींटों से शांत होता ऐसा विराट व्यक्तित्व है, जिसकी दृढ़ता विपरीत अनुभवों को सहते–समझते हुए कदम–दर–कदम बढ़ती जाती है। अंबेडकर को यह मजबूती तत्कालीन परिस्थितियों ने दी है। खुद उस समाज ने दी है, जिसका हिस्सा बाबासाहेब थे।

इस दृढ़ता का विलक्षण पक्ष यह है कि अंबेडकर चोट खाते हैं और हर चोट के साथ सामाजिक मजबूती के काम में और अधिक जोश–खरोश से जुट जाते हैं। समाज की व्यवस्थागत गलन और गंदगी पर बड़बड़ाते हैं लेकिन जहाँ इस राष्ट्र और समाज की अखंडता पर कोई हमला होता है, डॉ. अंबेडकर बाबासाहेब बन जाते हैं। इस समाज के अनुभवी बुजुर्ग की तरह व्यवहार करते हैं। एकरस समाज और मजबूत राष्ट्र के प्रबल पक्षधर हो जाते हैं। उनका 'कवच' बनकर खड़े हो जाते हैं।

बालक भीम का डॉ. अंबेडकर होने से लेकर बाबासाहेब रूपी राष्ट्ररक्षक कवच में ढलना ऐसी परिघटना है, जो सबके जीवन में नहीं घटती। यदि घटती है तो उस यंत्रणा को झेलना सबके बस की बात नहीं। इस महामानव के जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं को तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में और खुद बाबासाहेब की नजर से देखना जरूरी है।

छोटे–से बच्चे का अन्य बच्चों के साथ खेलने के लिए मचलना और विवशता से भरी माँ द्वारा उसे यह कहकर गोद में उठा लेना कि सूबेदार मेजर का बेटा होने के साथ तू महार भी है, बालमन पर कैसी चोट लगी होगी! बंधनों में जकड़े बचपन की इस छटपटाहट और आँसुओं में डूबे इस सबक को बच्चे की नजर से समझना होगा। बच्चे तो बच्चे हैं, बालकों में फर्क होता है क्या? यह जीवन का पहला झटका, पहला सवाल है, जो भीम के मन में उथल–पुथल मचाता है। और उसे इस नन्ही उम्र में प्रश्नों की बजाय उत्तर खोजने की तरफ मोड़ देता है।

अन्य छात्रों–शिक्षकों के जूतों के पास बैठकर पढ़ने की शर्त पर विद्यालय में दाखिला मिलना, पिता अपमान और ग्लानि से भरे हैं, माँ की आँखों में आँसू हैं, किन्तु छह वर्ष का बच्चा कहता है– 'माँ मेरा दाखिला करा दो, मैं जूतों के पास बैठकर पढ़ लूँगा।' बच्चों में फर्क देखने वाले तथाकथित बड़े लोगों के समाज को भीम का यह पहला उत्तर है।

माँ भीमाबाई स्थिति को समझती हैं और उसकी आँखें अपने नन्हें बेटे की असीम संभावनाओं को पहचानती भी हैं। वह कहती हैं, 'बेटा तुम्हें समाज में बहुत अपमान सहना पड़ेगा, बड़ी घृणा झेलनी पड़ेगी। इस सबकी परवाह न करना। तुम्हें पढ़ना है। बिना पढ़े कोई बड़ा आदमी नहीं बन सकता। जब तुम बड़े आदमी बन जाओ, तब समाज की इस गंदी रीत को बदल डालना, यही मेरी इच्छा है।'

माँ का सपना भीम के मन का संकल्प बनता है। घर से अपनी अलग टाट–पट्टी साथ ले जाना। जूतों के बीच, दहलीज पर बैठकर पढ़ना। आधी छुट्टी में दीवार की ओर मुँह करके पेट भरना... उलाहनों को पीते, विषमताओं में जीते हुए लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित किए भीम का समाज को दूसरा उत्तर है– परिस्थिति से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है परिणाम।

जिस माँ की आँखों में अपने भीम को पढ़ाने और बड़ा आदमी बनते देखने का सपना था, उस माँ को इस कारण रोग से प्राण छोड़ते देखना कि तथाकथित के घर श्रेष्ठ वैद्य आने को तैयार नहीं, दिल बैठने लगता है। आँसू सूख जाते हैं, भूख मर जाती है, बच्चे के लिए मानो पूरी दुनिया ही निष्प्राण हो जाती है। मगर वह फिर खड़ा होता है। यह भीम की जिजीविषा है। उसने मन ही मन संकल्प किया होगा कि निम्न और कुलीन के अन्यायपूर्ण प्रश्नों में झूलते समाज को उत्तर देना ही होगा। बैठने से काम नहीं चलेगा। माँ जिस रोग से गई उससे बड़ा रोग समाज को लगा है। मैं समाज के रोग का इलाज करूँगा, अंबेडकर का यह मूक प्रण सामाजिक निष्ठुरताओं को उनका तीसरा उत्तर है।

अंबेडकर बड़े हैं तो बाधाएँ पार करने के कारण। बाबासाहेब का व्यक्तित्व विराट है तो इस कारण कि कदम–कदम पर अपमान का विष पीने के बाद भी उनके मन में घृणा नहीं उपजी। ऐसा नहीं है कि अंबेडकर को क्रोध नहीं आता। वे परिस्थितियों पर झुँझलाते हैं, मुट्ठियाँ भींचते हैं, अकेले में रोते हैं, जाति की छोटी–बड़ी जंजीरों को तोड़ना चाहते हैं। जो गलत करता है उसे खुलकर फटकारते भी हैं। लेकिन इन सभी मानवीय गुणों के साथ वे विलक्षण हैं तो इसलिए कि वे कभी भी अपनी सदाशयता नहीं छोड़ते। शब्द कैसे भी हों, उनका आशय सदा अच्छा बना रहता है। जिन्होंने अच्छा किया, अंबेडकर उनकी अच्छाई नहीं भूलते।

रामजी सकपाल के पुत्र का नाम भीम है। उपनाम सकपाल है। किन्तु प्राथमिक शाला के जिन ब्राह्मण मुख्याध्यापक ने भीम के लिए सबसे पहले शिक्षा मंदिर के दरवाजे खोले, इस छात्र की अनुपम

मेधा को पहचाना, प्यार से अपना उपनाम दिया, बाबासाहेब ने उस ब्राह्मण उपनाम अंबेडकर को अंत तक अपने हृदय से लगाए रखा। बड़ोदा नरेश महाराज गायकवाड़ का पूरा सहयोग इस मेधावी छात्र को मिला। उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति मिली, रियासत को सेवा देते हुए लेफ्टिनेंट का ओहदा मिला। मगर जब मृत्यु शैया पर पड़े पिता की सेवा के लिए छुट्टी न देने वाले अधिकारी का कड़वा व्यवहार मिलता है तो अंबेडकर महाराज से गुहार नहीं लगाते। संबंधों का लाभ नहीं उठाते। कोई कटुता नहीं पालते। वे पिता की सेवा के लिए रियासत की रौबदार नौकरी सहज ही छोड़ देते हैं। मान–अपमान की लड़ाई की बजाय वे अनुशासन और भारतीय संस्कार की लीक पकड़ते हैं। बाद में महाराज गायकवाड़ से मुलाकात होती है परंतु दोनों ओर से वही सजगता, वही सहयोग और सम्मान मिलता है। विषम परिस्थितियों से जूझने के बाद भी चीजों को बिगड़ने न देना यह डॉ. अंबेडकर की विशेषता है। सोचिए, जो लोग बाबासाहेब के वर्ग हितैषी, सवर्ण शत्रु और विद्रोही व्यक्तित्व का चित्र खींचते हैं, उनका चित्र कितना अधूरा है।

कुछ लोग डॉ. अंबेडकर को सिर्फ तत्कालीन तथाकथित वर्ग का क्रांतिकारी नेता सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। यह बाबासाहेब की विराट सर्व समावेशी दृष्टि को संकीर्ण दायरे में बाँधने का असफल प्रयास है। यह उस व्यक्ति के साथ सरासर अन्याय है, जिसने सामाजिक विषमताओं का दंश झेलने के बावजूद इस समाज की सामूहिक शक्ति को पहचाना और राष्ट्रहित में सबसे एक रहने का आह्वान किया। सबसे पहले देश, अंबेडकर की सोच यही है। यहाँ जाति, वर्ग और पंथों के विभाजन की नहीं, एकात्म की कल्पना है। देश की एकता और स्वतंत्रता के लिए छोटी–बड़ी जातियों में बँटे वर्गों को एकजुट होना चाहिए और मजहब, पंथ, जाति ये देश से बड़े नहीं हो सकते, यह बाबासाहेब का स्पष्ट मत था। यह विचार डॉक्टर अंबेडकर ने सन् 1949 के अंत में एक भाषण में सामने रखा था। भाषण का शीर्षक था– ''देश को समुदाय से ऊपर रखना चाहिए। सामाजिक कटुता बाँटती है और नुकसान पूरे देश, पूरे समाज का होता है'' यह बात अंबेडकर ने अपमान के घूँट पीने के बाद भी कैसे मन में बैठाई होगी! क्या यह आसान था?

1917 में कोलंबिया विश्वविद्यालय से पढ़कर लौटे डॉ. अंबेडकर को महाराज गायकवाड़ तो सैन्य सचिव का ऊँचा ओहदा देते हैं लेकिन जातिगत श्रेष्ठता के झूठे बंधनों को ढोते उनके अमलदारों में से कोई बाबासाहेब को लेने रेल्वे–स्टेशन तक नहीं पहुँचता। उच्च जाति का चपरासी, सैन्य सचिव को फाइलें पकड़ाता नहीं, दूर से पटकता है। इस अधिकारी के पानी माँगने पर मातहत साफ–साफ मना कर देते हैं! कोई घर देने को तैयार नहीं, पहचान छिपाकर कमरा ले भी लिया तो सामान सड़क पर पटक दिया जाता है। दिल में दर्द उमड़ता है, आँखों में आँसू आते हैं किन्तु अंबेडकर का बड़प्पन कि वे ऐसी तुच्छताओं को अपनी क्षमा की चादर से ढक देते हैं। यही अंबेडकर नवंबर 1918 में बंबई (अब मुम्बई) के सिडनहम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स में राजनीति और अर्थशास्त्र के शिक्षक होकर आते हैं तो एक रोज प्यास से गला सूखने पर घड़ा छूते भर हैं कि बवाल हो जाता है।

मेधा, शिक्षा, डिग्री सब व्यर्थ! क्या सनातनी कस्बे, क्या पारसी धर्मशाला, क्या ईसाई कॉलेज? सब जगह सोच का वही छोटापन, वही विष! यह महामानव हर कदम पर हलाहल पीता है मगर अपने भीतर किसी के लिए कोई जहर नहीं पालता।

उपर्युक्त घटनाओं के संग–संग कालान्तर में अंबेडकर की प्रतिक्रियाओं के रूप में सामने आता

उनका व्यक्तित्व स्वतः अपना स्थान बनाता है। किंतु इन सबके साथ 25 नवंबर, 1949 को भीमराव अंबेडकर का एक भाषण तुलनात्मक संदर्भ के तौर पर जरूर पढ़ा जाना चाहिए। यह भाषण बाबासाहेब की सांस्कृतिक चेतना का दस्तावेज तो है ही, यह भी दिखाता है कि तुच्छ व्यवहार ने बाबसाहेब को आहत जरूर किया था, परंतु उनकी समझ को कुंठित करने में असफल रहा था। इस रोज संविधान सभा के जरिए डॉ. अंबेडकर ने देश को झकझोरा था। वह आह्वान, वह चेतावनी आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है। इस भाषण में देश के सांस्कृतिक अतीत और इस पर आक्रमणों का पूरा लेखा उन्होंने देश के सामने रखा था। अंबेडकर ने याद दिलाया कि जब मुहम्मद–बिन–कासिम भारत पर आक्रमण के लिए उत्तर–पश्चिम की सीमा पर आया, तब राजा दाहिर ने मुकाबला करने का निर्णय लिया। किंतु दुर्भाग्य से राजा दाहिर पराजित हुए और मुहम्मद बिन कासिम जीत गया। वीर होने के बाद भी दाहिरसेन की हार हुई क्योंकि उनका सेनापति देशद्रोही निकला।

उस महामानव के जीवन की घटनाओं, घटनाओं की प्रतिक्रियाओं और इस सबसे पककर निकली सोच को सामने रखती ये कुछ झलकियाँ भर हैं। वास्तव में तो डॉ. अंबेडकर का सारा जीवन समाज के कटुतम प्रश्नों का सरलतम और सटीक उत्तर है।

मनोवैज्ञानिक तौर पर 'जैसे को तैसा' यह सहज मानवीय व्यवहार है लेकिन डॉ. अंबेडकर ने, कोई कैसा है के सामने किसी व्यक्ति और व्यवस्था को कैसा होना चाहिए, यह उदाहरण और व्याख्याएँ सामने रखते हुए आम मनोवैज्ञानिक धारणाएँ झुठला दी थीं। वे जुझारू थे, दबते नहीं थे, इसलिए उन्होंने 'अखिल भारतीय शेड्यूल कास्ट फेडरेशन' बनाई थी। यह रणनीतिक फैसला था। उनका साफ मानना था कि अस्पृश्यता और अन्याय के विरूद्ध लड़ना है तो यह घर के भीतर की बात है और यह लड़ाई बाकी हिन्दू समाज से कटे रहकर नहीं लड़ी जा सकती और न ही दलितों को हाशिए पर पड़े रहने देना इसका इलाज है। प्रसिद्ध कामगार मैदान सभा में उन्होंने कहा था कि इच्छा से हो या अनिच्छा से, दलित वर्ग हिंदू समाज का ही अंग है। हमने महाड और नासिक में जो सत्याग्रह संघर्ष किया, वह हिंदुओं पर इस बात का दबाव डालने के लिए ही था कि वे दलितों को बराबरी के स्तर पर स्वीकार करें।

उनकी व्यवस्थावादी सोच में अस्पष्टता नहीं थी। न्याय व्यवस्था के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर मतैक्य स्थापित करना यह उनकी चाह थी। भले ही स्वयं उन्होंने कुछ भी झेला हो लेकिन इसके बाद भी समाज से अन्याय को दूर करने के लिए सबको सहमति तक पहुँचाने का प्रयास करते रहना, निरंतर जूझना, यही उनके जीवन का ध्येय था।

अंबेडकर यकीनन बड़े हैं, लेकिन वे बड़े हैं बड़ी बाधाएँ पार करने के कारण। बाबा साहेब का व्यक्तित्व विराट है तो इस कारण कि कदम–कदम पर अपमान का विष पीने के बाद भी इस व्यक्ति के मन में घृणा नहीं उपजती। कुछ लोग बाबासाहेब के जीवन को सिर्फ कुछ लोगों की चिंता और अन्य से नफरत का पुलिंदा बनाकर पेश करते हैं। ऐसे प्रयास अपने आप में घृणित हैं, क्योंकि यह एक बड़े व्यक्ति को बौना साबित करने की कोशिश है। चिंदियों को तस्वीर की तरह दिखाना उस विराट चित्र का अपमान है, जिसमें इस संपूर्ण राष्ट्र, इसकी चुनौतियों और अपने सहोदर समाज की परिस्थितियों का स्पंदन है। समझने वाली बात यह है कि डॉ. अंबेडकर के जीवन में समाजिक उठापटक और उलझाव तो खूब है, लेकिन दुराव नहीं है। यदि डॉ. अंबेडकर तत्कालीन भारतीय समाज की बुराइयों को काटने वाली तलवार की तरह तीखे हैं तो इस समाज की साझा शक्ति को बचाने वाली ढाल भी हैं।

भारतीय संस्कृति में तप बड़ी चीज है। व्यक्ति को शक्ति और तेज देने वाली तपस्या की राह कभी आसान नहीं होती। अंबेडकर का जीवन सरलताओं का सुगम पथ नहीं है। यह विपरीतताओं के काँटों और अपमान के अंगारों पर चलकर उन्हें कुचलकर तय की गई एक दुर्गम यात्रा है। भौगोलिक एवं सामाजिक अखंडता को समाज का अभिन्न अंग और समाज हित को सर्वोपरि मानते हुए खुद को गला देना कम बड़ी बात नहीं। यह तपस्या है। व्यष्टि यानी व्यक्ति समष्टि यानी संपूर्ण समाज के लिए कैसे अपना जीवन होम कर सकता है, इस बात की झाँकी है डॉ. अंबेडकर का तपमय जीवन।

अभ्यास के लिए प्रश्न

प्र. 1 डॉ. अंबेडकर ने महाराजा गायकवाड़ की नौकरी क्यों छोड़ी –

(क) अध्ययन हेतु (ख) माताजी की सेवा हेतु

(ग) पिताजी की सेवा हेतु (घ) राजनीति में आने हेतु

प्र. 2 डॉ. अंबेडकर के लिए सबसे पहले क्या था –

(क) जाति (ख) स्वयं

(ग) देश (घ) समाज

प्र. 3 बालक भीम को अंबेडकर उपनाम किससे मिला –

(क) पिताजी से (ख) माताजी से

(ग) शिक्षक से (घ) महाराजा गायकवाड़ से

प्र. 4 डॉ. अंबेडकर के पिताजी का नाम था –

(क) रामजी सकपाल (ख) सकजी रामपाल

(ग) पालजी सकराम (घ) रावजी भीमपाल

प्र. 5 बालक भीम को विद्यालय में प्रवेश किस शर्त पर मिला ?

प्र. 6 डॉ. अंबेडकर को मजबूती किसने प्रदान की ?

प्र. 7 लेखक के अनुसार डॉ. अंबेडकर के बड़े आदमी होने का कारण क्या था ?

प्र. 8 लेखक के अनुसार डॉ. अंबेडकर ने जीवन भर किससे लड़ाई लड़ी ?

प्र. 9 समाज को डॉ. अंबेडकर का पहला उत्तर क्या था ? पाठ के आधार पर बताइए।

प्र. 10 किस घटना ने बालक भीम के मन में उथल–पुथल मचा दी ?

प्र. 11 माँ भीमाबाई ने बालक भीम को क्या–क्या शिक्षा दी ? विस्तार से समझाइए।

प्र. 12 उच्च पद की नौकरी करने के बाद भी डॉ. अंबेडकर को किन–किन परेशानियों का सामना

करना पड़ा ?

प्र. 13 बालक भीम का बचपन जिन विषम परिस्थितियों में बीता, उनका उल्लेख कीजिए।

प्र. 14 लेखक के अनुसार डॉ. अंबेडकर ने अपने आचरण एवं व्यवहार से समाज को क्या–क्या उत्तर दिए ? समझाइए।

पाठ के आसपास

परस्पर समानता एवं समरसता की आवश्यकता एवं उपादेयता पर अपने शिक्षक के निर्देशन में समूह चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ

विष – जहर / सीझा– पका हुआ / विराट– बड़ा

/ तत्कालीन– उस समय का/की / बुजुर्ग– बूढ़े/घर के सबसे बड़े

/ कवच– सुरक्षा हेतु धारण किया जाने वाला आवरण/बख्तर

/ मचलना– जिद्द करना / दाखिला– प्रवेश / रीत– परम्परा

/ सबक– सीख / उलाहना– शिकायत / निष्प्राण– बिना प्राण के

/ जिजीविषा– जीने की इच्छा / कुलीन वर्ग– उच्च वर्ग / निष्ठुरता– कठोरता

/ विलक्षण– अद्भुत / मेधावी– बुद्धिमान / गुहार– प्रार्थना

/ हितैषी– भला चाहने वाला/शुभचिंतक / धूर्त– चालाक

/ ओहदा– पद / अमलदार– सेवाकर्मी

/ तुच्छ– हीन, क्षुद्र, नाचीज / आहत– दुःखी / सटीक– सही

/ मतैक्य– विभिन्न मतों में एकता / चिंदियां– कागज के छोटे–छोटे टुकड़े

/ दुर्गम– कठिन / होम देना– न्यौछावर करना